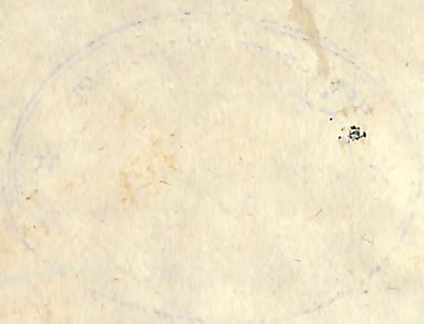


श्रीविश्वेश्वरो विजयते ।

अद्वैतमतविमर्शखण्डन

(लेखक—हाराणचन्द्र भट्टाचार्य्य—प्रधानाध्यापक मारवाड़ीसंस्कृतकालेज काशी)

अवतरणिका ।

माध्वसम्प्रदायाचार्य्य स्वामी श्रीसत्यध्यान तीर्थ जी महाराज ने 'अद्वैतमतविमर्श' नामक पुस्तक छपाकर काशी के पण्डितों में वितरण किया, इस पुस्तक में परमपूज्य भगवान् श्रीशङ्कराचार्य्य तथा उनके अद्वैतसिद्धान्त पर तीव्र आक्षेप किया गया । इस प्रकार साम्प्रदायिक विवाद असामयिक तथा अनुचित होने पर भी अपने सिद्धान्त की रक्षा के लिये हमें इस समय विवश होकर कलम उठाना पड़ता है । इस दशा में भी हम यथाशक्ति अन्य मत पर आक्षेप न करते हुए अपने सिद्धान्त का समर्थन करेंगे ।

अद्वैतमत और बौद्धमत का भेद ।

अद्वैत मत बौद्धमत है—अवैदिक मत है, यह बात अत्यन्त मिथ्या है । विज्ञानवादी बौद्धों के सिद्धान्त में कोई भी विज्ञान भी क्षणिक है—यह शाङ्करभाष्य (२।२।३१) में स्पष्ट लिखा है—'यदपि आलयविज्ञानं नाम वासनाश्रयत्वेन परिकल्पितं तदपि क्षणिकत्वाभ्युपगमादनवस्थितस्वरूपं सत्प्रवृत्तिविज्ञानवन्न वासनानामधिकरणं भवितुमर्हति ।'

बौद्धग्रन्थ की आलोचना न कर श्रीस्वामीजी ने अद्वैत मत तथा बौद्ध मत को एक समझा । परन्तु बौद्ध ग्रन्थ में ही अद्वैतवादी के औपनिषद मत को बौद्ध मत से पृथक् कहा और उस अद्वैत मत का खण्डन किया । नालन्दाविश्वविद्यालय के अध्यापक श्रीशान्तरक्षित विख्यात बौद्ध दार्शनिक थे । उनके 'तत्त्वसंग्रह' में अद्वैत मत का खण्डन है—

नित्यज्ञानविवर्त्तोऽयं क्षितितेजोजलादिकः ।
आत्मा तदात्मकश्चेति संगिरन्तेऽपरे पुनः ॥
ग्राह्यग्राहकसंयुक्तं न किञ्चिदिह विद्यते ।
विज्ञानपरिणामोऽयं तस्मात्सर्वः समीक्ष्यते ॥"

[तत्त्वसंग्रह ३२८—३२९]

" अपरे इति—औपनिषदिकाः "

[कमलशीलकृतपञ्जिका]

इस प्रकार पहले शाङ्करमत का अनुवाद कर अनन्तर खण्डन किया—

" तेषामल्पापराधं तु दर्शनं नित्यतोक्तितः ।
रूपशब्दादिविज्ञाने व्यक्तं भेदोपलक्षणात् ॥
एकज्ञानात्मकत्वे तु रूपशब्दरसादयः ।
सकृद्वेद्याः प्रसज्यन्ते नित्येऽवस्थान्तरं न च ॥"

[तत्त्वसंग्रह—३३०—३३१]

इस खण्डन से स्पष्ट प्रतीत होता है—बौद्ध विज्ञान को अनित्य मानता है; श्रीशङ्कराचार्य्य नित्य मानते हैं । बौद्ध ज्ञान को नाना मानता है; श्रीशङ्कराचार्य्य एक मानते हैं ।

तत्त्वसंग्रह मे ३३२—३३५ तक विज्ञान के एकत्व का खण्डन किया । इसलिये विज्ञानवादी बौद्धमत के विवरण में ज्ञान एक सच्ची नित्य वस्तु है (अद्वैतमतविमर्श ३ पृ०, १७ पृ०, १८ पृ०,) कहना अशुद्ध है ।

श्रीशङ्कराचार्य्य 'एकमेवाद्वितीयम्' (छा० ६।२।१) 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' (बृ० ३।९।२८) 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' (तै० २।१) इत्यादि श्रुतिप्रमाण तथा युक्ति से ज्ञानस्वरूप ब्रह्म को एक मानते हैं, उस ब्रह्म को सजातीय भेद, विजातीय भेद तथा स्वगत भेद से रहित मानते हैं (पञ्चदशी २।२०—२५) । बौद्ध विज्ञान को भिन्न भिन्न मानते हैं, इसलिये बौद्धमत में विज्ञान में सजातीयभेद अवश्य होता है । इस

प्रकार विज्ञानवादी बौद्ध श्रीमाध्व के तरह द्वैतवादी होने पर भी शाङ्कर अद्वैत मत को विज्ञानवादी बौद्ध का मत कहना अज्ञता है।

शून्यवादी माध्यमिक बौद्ध के मत से भी शाङ्कर मत भिन्न है। शून्यवादी शून्य को सत्, असत्, सदसत्, सदसदनुभयरूप—इस चार कोटि से अलग मानते हैं—

न सन्नासन्न सदसन्न चाप्यनुभयात्मकम्।
चतुष्कोटिविनिर्म्मुक्तं तत्त्वं माध्यमिका जगुः॥

[शिवार्कमणिदीपिका २।२।३०]

"माध्यमिकास्तावदुत्तमप्रज्ञा इत्थमचीकथन् × × × अतस्तत्त्वं सदसदुभयानुभयात्मकचतुष्कोटिविनिर्मुक्तं शून्यमेव।"

[सर्वदर्शनसंग्रहबौद्धदर्शन]

अद्वैत मत में ब्रह्म सत्स्वरूप है, तथा ज्ञानस्वरूप है। शून्यवादी शून्य को सत्स्वरूप नहीं मानते हैं, यदि सत्स्वरूप शून्य होता तो सत्कोटि में आ जाता, उक्त चतुष्कोटिविनिर्मुक्त नहीं हो सकता। शून्य को सत् मानने पर शून्यवादी के अपसिद्धान्त की आपत्ति होती है। इसलिये अद्वैतवादी का ज्ञानस्वरूप ब्रह्म माध्यमिक का शून्य नहीं है। शून्यवादी शून्य को ज्ञानस्वरूप मानते हैं, ऐसा श्रीस्वामीजी नहीं कह सकते। ऐसा कहने से उनके कथनानुसार (अद्वैतमतविमर्श १७ पृ., १८ पृ.) विज्ञानवादी तथा शून्यवादी का मत एक हो जायगा। शून्यवादी लोग विज्ञान को पारमार्थिक तत्त्व नहीं समझते हैं—

नेष्टं तदपि धीराणां विज्ञानं पारमार्थिकम्।
एकानेकस्वभावेन विरोधाद्वियदब्जवत्॥

[शिवार्कमणिदीपिका २।२।३०]

"अतो न विज्ञानमेव तत्त्वमिति व्यवस्थापयितुं शक्यम्।"

[अवैदिकदर्शनसंग्रह (वाणीविलासप्रेस) १७ पृ.]

अद्वैतवादी नित्यविज्ञान को ही पारमार्थिक तत्त्व मानते हैं। इसलिये अद्वैतमत शून्यमत से अलग है।

अद्वैतवादी अपने ब्रह्म में भावरूपता तथा अभावरूपता दोनों धर्म्म झूठे हैं, ऐसा कथन करते हैं। (अद्वैतमतविमर्श २० पृ.)

श्रीस्वामीजी अज्ञता से इस प्रकार लिखते हैं। अद्वैतवादी ब्रह्मसत्ता को ब्रह्मस्वरूप ही मानते हैं, ब्रह्म सत्य होने से ब्रह्मस्वरूप सत्ता भी सत्य है। (सिद्धान्तबिन्दु–नारायणी ८ पृ० चौखम्भा)। उक्त सत्ता सत्य होने पर भी ब्रह्म से अतिरिक्त न होने से द्वैतापत्ति नहीं हुई। अद्वैती अभाव को अधिकरणस्वरूप मानते हैं; इसलिये ब्रह्म में जो प्रपञ्चाभाव है, वह ब्रह्मस्वरूप ही है:—

सौगतप्राभाकरादिवद् भावे नैयायिकवच्चाभावेऽभावानतिरेका-देव चाद्वैताव्याघातः।

[खण्डनखण्डखाद्य-प्रथमपरिच्छेद]

"सौगतैः प्राभाकरैश्चाधिकरणस्वरूपमेवाभावोऽभ्युपगम्यते नैयायिकैरपि 'घटाभावे पटो नास्ति' इत्यादिप्रतीतेरधिकरणस्वरूप-मात्रालम्बनत्वाभ्युपगमाच्च प्रकृते ब्रह्मैव द्वैताभावोऽङ्गीक्रियते।"

[शाङ्करी।]

अत एव प्रपञ्चाभाव ब्रह्मस्वरूप होने से सत्य है।

बौद्धमत में व्यावहारिक प्रमाण दो हैं-प्रत्यक्ष और अनुमान; इससे अन्य व्यावहारिक प्रमाण भी बौद्ध नहीं मानते हैं—

ननु शब्दप्रमाणादिप्रमाणान्तरसम्भवात्।
निर्दिष्टलक्षणं कस्माद्द्वयोरेव प्रमाणयोः॥
उच्यते, न द्वयादन्यत्प्रमाणमुपपद्यते।
प्रमाणलक्षणायोगाद्योगे चान्तर्गमादिह॥

[तत्त्वसंग्रह १४८७ - १४८८]

अद्वैती व्यावहारिक प्रमाण छः मानते हैं–यह वेदान्तपरिभाषा-प्रमाणपरिच्छेद में निरूपण किया है। वरदराजने भी तार्किकरक्षा में कहा है—

प्रत्यक्षमेकं चार्वाकाः कणादसुगतौ पुनः।
प्रत्यक्षमनुमानं च सांख्याः शब्दश्च ते अपि॥

न्यायैकदेशिनोऽप्येवमुपमानं च केचन ।
अर्थापत्त्या सहैतानि चत्वार्य्याह प्रभाकरः ॥
अभावषष्ठान्येतानि भाट्टा वेदान्तिनो जगुः ।

[तार्किकरक्षा—प्रमाणप्रकरण]

बौद्ध श्रुति का व्यावहारिक प्रामाण्य भी नहीं मानते हैं—

सर्वमेतद्द्विजातीनां मिथ्यामानविजृम्भितम् ।
घुणाक्षरवदापन्नं सूक्तं नैषां हि किञ्चन ॥ २३५२

इत्यादि से तत्त्वसंग्रह में वेद के प्रामाण्य का खण्डन किया है। अद्वैतमत में ब्रह्मसाक्षात्कार के अनन्तर व्यावहारिक प्रपञ्च को बाधित माना गया; उस से पूर्व समस्त प्रमाणप्रमेयफलव्यवहार को सत्य माना गयाः—

"सर्वव्यवहाराणामेव प्राग् ब्रह्मात्मताविज्ञानात्सत्यत्वोपपत्तेः। स्वाप्नव्यवहारस्येव प्राक् प्रबोधात्। यावद्धि न सत्यात्मैकत्वप्रतिपत्तिस्तावत्प्रमाणप्रमेयफललक्षणेषु विकारेषु अनृतत्वबुद्धिर्न कस्यचिदुत्पद्यते । × × । तस्मात्प्राग् ब्रह्मात्मताप्रतिबोधादुपपन्नः सर्वो लौकिको वैदिकश्च व्यवहारः।" [शाङ्करभाष्य २।१।१४]

इस प्रकार श्री शङ्कराचार्य्य ने श्रुति को प्रमाण माना।

"अयं धर्म्मोऽयमधर्म्म इति शास्त्रमेव विज्ञाने कारणम् ।

× × × × × × ×

शास्त्राद्दृते धर्म्माधर्म्मविषयं विज्ञानं न कस्यचिदस्ति । शास्त्राच्च हिंसानुग्रहाद्यात्मको ज्योतिष्टोमो धर्म्म इत्यवधारितः × × तस्माद्विशुद्धं कर्म्म वैदिकं, शिष्टैरनुष्ठीयमानत्वादनिन्द्यमानत्वाच्च ।

[शाङ्करभाष्य ३।१।२५]

"नहि सदाचारहीनः कश्चिदधिकृतः स्यात्—'आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः' इत्यादिस्मृतिभ्यः।"

[शाङ्करभाष्य ३।१।१०]

ऊपर उद्धृत शाङ्करभाष्य से स्पष्ट प्रतीत होता है कि-आचार्य्य श्री शङ्कर शास्त्र तथा सदाचार के प्रति कैसी उत्कट श्रद्धा रखते थे। इस प्रकार परमास्तिक भगवान् श्री शङ्कराचार्य्य तथा उनके मत को बौद्ध तथा अवैदिक कहना, केवल विद्वेष से दूसरों के आंखों में धूल झोंकना है।

मीमांसक लोग स्वतः प्रामाण्यवादी हैं। ज्ञान का प्रमात्व स्वतः उत्पन्न होता है और स्वतः ज्ञात होता है, अप्रमात्व परतः होता है,- यह मीमांसक सिद्धान्त है;—

स्वतः सर्वप्रमाणानां प्रामाण्यमिति गम्यताम् ।
न हि स्वतोऽसती शक्तिः कर्त्तुमन्येन शक्यते ॥ ४७ ॥

× × × × × × ×

तस्माद्बोधात्मकत्वेन प्राप्ता बुद्धेः प्रमाणता ।
अर्थान्यथात्वहेतूत्थदोषज्ञानादपोद्यते ॥ ५३ ॥

[श्लोकवार्त्तिक–चोदनासूत्र]

अद्वैतवादी व्यवहार में साधारण रूप से भाट्ट मत का अनुसरण करते हैं—

"व्यवहारे भाट्टनय इत्यङ्गीकारात् ।"

[चित्सुखी-प्रथमपरिच्छेद-शेष]

इसलिये अद्वैती भी स्वतः प्रामाण्यवादी हैं। वेदान्तपरिभाषा के अभाव परिच्छेद के अन्त में स्वतः प्रामाण्य परतः अप्रामाण्य का समर्थन किया। भामती में अध्यास प्रकरण में अख्यातिवाद के खण्डन के अन्त में स्वतः प्रामाण्य पक्ष का स्वीकार किया। कल्पतरु तथा परिमल में भी उसी स्थल में स्वतः प्रामाण्यवाद का प्रतिपादन है।

इस विषय में बौद्धों का मत विपरीत है; बौद्ध ज्ञान मात्र का स्वतः अप्रामाण्य तथा परतः प्रामाण्य मानते हैं—

* प्रमाणत्वाप्रमाणत्वे स्वतः सांख्याः समाश्रिताः ।*
* नैयायिकास्ते परतः* सौगताश्चरमं स्वतः ॥

प्रथमं परतः प्राहुः* प्रामाण्यं वेदवादिनः ।
प्रमाणत्वं स्वतः प्राहुः परतश्चाप्रमाणताम् ॥*

[सर्वदर्शनसंग्रह-जैमिनिदर्शन]

तत्त्वसंग्रह में २८११ कारिका से ज्ञान के स्वतः प्रामाण्य का खण्डन किया। २८४३ कारिका से स्वतः अप्रामाण्य का आपादन कर उसका समर्थन किया। इस प्रकार से शाङ्कर मत से बौद्ध मत अत्यन्त भिन्न सिद्ध होता है।

श्रीस्वामीजी ने अद्वैत मत तथा बौद्ध के ग्रन्थों का उत्तम रूप से परिशीलन नहीं किया। जिन ग्रन्थों का परिशीलन किया, उस का भी अर्थावधारण न होने से विपरीत ज्ञान प्राप्त किया। अद्वैत मत के अधिक ग्रन्थ का परिशीलन यदि न हो सके तो श्री स्वामी जी न्यायरत्नावली-सहित सिद्धान्तबिन्दु का उत्तम रूप से अध्ययन करें, यदि उस ग्रन्थ को ठीक ठीक समझ जायेंगे तो अद्वैत मत पर व्यर्थ आक्षेप करने की इच्छा हट जायगी। अष्टम श्लोक के न्याय रत्नावली में भक्ति का निरूपण भी बहुत उत्तमता से किया है; नवम श्लोक में श्रीमाध्वमत का खण्डन भी किया है। श्रीस्वामीजी अद्वैत मत न जान कर उस पर आक्षेप न करें—यही मेरी सविनय प्रार्थना है।

विज्ञानवादी तथा शून्यवादी के अतिरिक्त सर्वास्तित्ववादी सौत्रान्तिक तथा वैभाषिक भी बौद्ध हैं। श्रीमाध्व भी सर्वास्तित्ववादी हैं; तथा बौद्ध अहिंसा, सत्य, अस्तेय इत्यादि को धर्म्म मानते हैं; श्री माध्व भी मानते हैं। बौद्धों से अनेक विषयों में मतभेद होने पर भी यदि शाङ्करमत बौद्ध मत समझा जाय तो पूर्वोक्त विषयों में ऐक्य होने से श्रीमाध्वमत को बौद्ध मत क्यों न समझा जाय?

अद्वैतमत का वैदिकत्व।

उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वता फलम् ।
अर्थवादोपपत्ती च लिङ्गं तात्पर्य्यनिर्णये ॥

इन षड्विध लिङ्गों से श्रुति का तात्पर्य्य निर्णय अद्वैत ब्रह्म में किया। श्रुति का तात्पर्य्य भेद (द्वैत) में नहीं है; श्रुति स्वयं भेददृष्टि की निन्दा करती है—

"मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानाऽस्ति किञ्चन ।
मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति ।।

[कठ ४।११]

श्रुति में भेद-दृष्टि की निन्दा मिलती है; अभेददृष्टि की निन्दा श्रुति में नहीं है। इस से प्रतीत होता है,—श्रुति का तात्पर्य्य भेद में नहीं है, किन्तु अभेद में ही तात्पर्य्य है। लौकिक प्रतीति (भ्रम) मात्र से सिद्ध अपारमार्थिक द्वैत का श्रुति ने अनुवाद किया। वह अनुवाद भी 'अध्यारोपापवादन्याय' से अद्वैत ब्रह्म तत्त्व के प्रतिपादन के लिये ही है—इस प्रकार 'तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः (२।१।१४) इस सूत्र के शाङ्करभाष्य में कहा गया है। लौकिक-प्रतीति-सिद्ध भेद की अनुवादक द्वैत श्रुतियों में अद्वैतियों के मत में लक्षणा नहीं है। 'तत्त्वमसि' इत्यादि अद्वैत श्रुतियों में भी अद्वैतमत में वस्तुतः लक्षणा नहीं है। अद्वैतसिद्धि प्रथम परिच्छेद में प्रत्यक्ष के आगमबाध्यत्व का निरूपण करते हुए तथा अन्यत्र प्राचीन ग्रन्थकारों ने प्रौढिवाद से लक्षणा मानकर भी अद्वैतसिद्धान्त का समर्थन किया। वेदान्त-परिभाषा में आगमपरिच्छेद में यह सिद्ध किया है—लक्षणा के विना शक्ति से ही विशिष्ट-वाचक पद से विशेष्यमात्र का बोध तात्पर्य्यवश होता है। 'तत्त्वमसि' इत्यादि महावाक्यों में द्वैतमत में लक्षणा विना अन्य गति नहीं है। अद्वैती लाघव देखकर 'तत्त्वमसि' इत्यादिमहावाक्य में सर्वज्ञत्व तथा किञ्चिज्ज्ञत्वरूप-विशेषण को छोड़कर विशेष्यमात्र शुद्ध चैतन्य का बोध शक्ति से मानते हैं। इस प्रकार अद्वैतमत में द्वैतश्रुति तथा अद्वैतश्रुति-किसी श्रुतिमें लक्षणा न होने से अत्यन्त लाघव है। अद्वैतपक्ष में लाघवरूप उपपत्ति होने से यही पक्ष श्रुति सम्मत है। द्वैतपक्षमें अद्वैत श्रुतियों में लक्षणा अवश्य माननी होगी,-इसलिये गौरव-ग्रस्त द्वैतपक्ष में श्रुति का तात्पर्य्य नहीं है।

अद्वैत मत की प्रबलता ।

अद्वैती विवर्त्तवादी हैं; आरम्भवाद तथा परिणामवाद-ये दोनों मत द्वैतवादियों के हैं। एक परमाणु से अन्य परमाणु का संयोग होकर द्व्यणुक बनता है, तीन द्व्यणुक से त्रसरेणु बनता है-इस क्रमसे घटादि की उत्पत्ति होती है-यह आरम्भवाद है। संयोग सावयव वस्तुमें होता है, निरवयव वस्तु का संयोग कहीं नहीं देखा गया। दोनों परमाणु निरवयव होने से उनका संयोग नहीं बन सकता। संयोग के लिये यदि परमाणुमें अवयव माना जायगा तो अवयव का अवयव, उस का भी अवयव,-इस क्रम से अनन्त अवयव की कल्पना करनी होगी-अनवस्था हो जायगी। परिणाम-वाद में प्रकृति यदि निरवयव होगी तो उस का परिणाम नहीं हो सकता, निरवयव वस्तु का परिणाम कहीं दृष्ट नहीं है। प्रकृति को सावयव मानने पर पूर्वोक्त रीति से उस की अवयव-धारा की विश्रान्ति न होगी-अनवस्था हो जायगी। इसलिये आरम्भवाद और परिणामवाद युक्तिसिद्ध नहीं है। विवर्त्तवादी अद्वैतियों के मत से सृष्टि प्रातीतिक है, पारमार्थिक नहीं है। सृष्टि कल्पित होने से उस पर दोष का उद्भावन व्यर्थ है (भामती २।१।३३)। आरम्भवाद तथा परिणाम-वाद में उपपत्ति न होने से जगत् को कल्पित मानना पड़ा,-विवर्त्त-वाद का आश्रयण करना पड़ा। यदि कोई वादी आरम्भवाद अथवा परिणामवाद को युक्ति से सिद्ध कर दें तो अद्वैतवादी मानने के लिये तैयार हैं। परन्तु युक्ति तथा श्रुति से जगत् पारमार्थिक नहीं सिद्ध होता; इसलिये विवर्त्तवाद मानना पड़ता है।

श्रीशङ्कराचार्य्य पर पौराणिक आक्षेप का उत्तर ।

"मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते ।
मयैव कथितं देवि कलौ ब्राह्मणरूपिणा ॥"

[पद्मपुराण]

श्रीविज्ञानभिक्षु ने सांख्य प्रवचन भाष्य की भूमिका में इस वचन का उद्धृत किया। श्रीस्वामीजी ने भी इस वचन तथा और वचनों

को उद्धृत कर शाङ्कर मत को बौद्ध मत सिद्ध करने के लिये यत्न किया। पुराण स्वयं प्रमाण नहीं है,-स्मृतिरूपमें पुराण की प्रमाणता है। स्मृति का प्रामाण्य मूलभूत वेद के अनुमान से होता है; श्रुति की भांति स्वतःप्रामाण्य स्मृति में नहीं है। अत एव कहा हैः—

अपि वा कर्तृसामान्यात् प्रमाणमनुमानं स्यात्।

[मीमांसादर्शन १।३।२]

यदि प्रत्यक्ष श्रुति से विरोध हो तो, स्मृति अप्रमाण होती है। 'औदुम्बरीं स्पृष्ट्वोद्गायेत्' इस प्रत्यक्ष श्रुति से विरुद्ध होने पर 'औदुम्बरी सर्वा वेष्टयितव्या' यह स्मृति प्रमाण नहीं होती। लोभादि दृष्ट कारण की सम्भावना होने पर भी स्मृति प्रमाण नहीं होतीः—

हेतुदर्शनाच्च (मी० द० १।३।४)

'वैसर्जनहोमीयं वासोऽध्वर्युर्गृह्णाति' यह स्मृति लोभमूलक होने से प्रमाण नहीं है। इस स्मृति का कारण दृष्ट लोभ हो सकता है; इसलिये इस स्थल में मूलभूत श्रुति की कल्पना नहीं होती। पूर्वोक्त 'मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते' इत्यादि स्मृति द्वेषमूलक सम्भावित होने से अप्रमाण है; इस स्थल में भी मूलभूत श्रुति की कल्पना न होगी। सदाचार का प्रामाण्य विचार करते हुए भट्टपाद ने सिद्धान्त किया—जिन स्थलों में कामादि दृष्ट कारण हो सकते हैं, उन स्थलों में सदाचार अथवा स्मृति से मूलभूत श्रुति की कल्पना नहीं होती। यद्यपि आपस्तम्ब के वचन के प्रसङ्ग में यह बात आई—

"स्पष्टकामादिहेत्वन्तरदर्शनान्न विरुद्धाचाराणामापस्तम्बवचनस्य वा श्रुतिमूलत्वोपपत्तिः"

[तन्त्रवार्तिक १।३।७]

तथापि युक्ति की तुल्यता होने से अन्य ऐसी स्मृतियोंमें भी यह बात लागू है। अतः 'मायावादमसच्छास्त्रम्' इत्यादि स्मृति अप्रमाण हैं, यह मीमांसक रीति से सिद्ध हुआ।

श्रीशङ्कराचार्य्य पर आधुनिक आक्षेप का उत्तर ।

बौद्धदर्शन के पक्षपाती कुछ पाश्चात्य तथा भारतीय सज्जन शाङ्कर मत को बौद्ध मत कहे हैं । श्रीस्वामीजी अपनी अज्ञता से दूसरों की अज्ञता को मिलती जुलती देखकर प्रसन्न हुए और उन के मतों का उद्धरण किया । श्रीस्वामीजी ने शाङ्कर मत को बौद्ध मत कहकर जिस प्रकार दार्शनिकता दिखलाई और शाङ्कर तथा बौद्ध मतों में अपना पाण्डित्य प्रगट किया, ये सज्जन भी उससे पश्चात्पद नहीं हुए । श्रीस्वामीजी ने सुना होगा,—वेदान्त शास्त्र यथा विधि गुरुमुख से पढ़कर मनन करना पड़ता है, तभी उसमें संस्कार होता है । शाङ्कर तथा बौद्ध मतों में पूर्वप्रदर्शित भेद होने पर भी स्वयंसिद्ध पण्डितों को न दिखाई पड़े तो यास्क के साथ एक स्वर से कहना पड़ता है,—

"नैष स्थाणोरपराधो यदेनमन्धो न पश्यति, पुरुषापराधः स भवति ।"

[निरुक्त १।१६।१०]

बौद्धों से भी पूर्वकालिक श्रुति में अद्वैत मत का प्रतिपादन है; आचार्य्य श्रीशंकर प्रभृति ने उस मत को लोक में प्रकाशित मात्र किया ।

उपसंहार ।

अद्वैतमत तथा अद्वैतवादियों से किये गये बौद्धमतखण्डन को न समझकर श्री शङ्कराचार्य्य तथा उनके मत पर निर्मूल आक्षेप करना, कदापि सत्पुरुष के लिये उचित नहीं है । श्री शङ्कराचार्य्य यज्ञ, तीर्थ, स्वर्ग, देवता, इत्यादि को झूठे कहे हैं (अद्वैतमत-विमर्श ११ पृ.) ऐसा कथन उनका सिद्धान्त न जानकर केवल विद्वेषभाव से ही हो सकता है । अद्वैत मत श्रुति में है ही, पुराण तथा भागवत में भी अद्वैत मत का प्रतिपादन है,—

'अहमेव परो विष्णुर्मयि सर्वमिदं जगत् ।
इति यः सततं पश्येत्तं विद्यादुत्तमोत्तमम् ॥' २०८

'शिव एव हरिः साक्षाद् हरिरेव शिवः स्वयम् ।
तयोरन्तरकृद् याति नरकान् कोटिकोटिशः ॥' २१४

[बृहन्नारदीयपुराण १४ अध्याय]

" वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं तज्ज्ञानमद्वयम् ।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥ "

[भागवत १।२।११]

बौद्ध दार्शनिक कमलशील ने भी जिस शाङ्कर मत को तत्त्वसंग्रह-पञ्जिका में 'औपनिषदिक' कहा, उसी को आप अवैदिक कहते हैं, यह आप का साहस है ।

रुद्राक्षजाबालोपनिषद् तथा बृहज्जाबालोपनिषद् में रुद्राक्ष तथा भस्म धारण का विधि है, इस लिये ये वैदिक हैं ।

श्री स्वामीजी से मेरी सविनय प्रार्थना है, आप शाङ्कर मत का अध्ययन करें, मनन करें, उस के तत्त्व को समझने के लिये यत्न करें ।

आशा है, श्रीस्वामीजी की लेखबद्ध शास्त्रार्थ की इच्छा इस लेख से पूरी हो जायगी और अतः पर श्रीस्वामीजी श्रीमाध्व मत के वैदिकत्व पर विचार करने के लिये हमें बाध्य नहीं करेंगे ।

"मान्यान् प्रणम्य विहिताञ्जलिरेष भूयो-
भूयो विधाय विनयं विनिवेदयामि ।
दूष्यं वचो मम परं निपुणं विभाव्य
भावावबोधविहितो न दुनोति दोषः ॥"

कृ० ब० पात्रगी द्वारा हितचिन्तक प्रेस, रामघाट, बनारस सिटी में मुद्रित । ६७३१ a

